

○ वीतराग-विज्ञान (दिसम्बर-मासिक) \* 26 नवम्बर 2009 ● वर्ष 27 ● अंक 9

## सम्पादकीय

### नियमसार : एक अनुशीलन

गुरुदेव श्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इस प्रकार स्पष्ट करते हैं -

“देखो, यहाँ बावड़ी के पानी का दृष्टान्त है; क्योंकि नदी का पानी तो हिलता है, गति करता है, लेकिन बावड़ी का पानी हिलता नहीं है; अपितु स्थिर रहता है। इसीप्रकार धर्मास्तिकाय भी एक अरूपी पदार्थ है और उसमें गति नहीं है, वह स्थिर है।

मात्र (अ, इ, उ, ऋ, लृ) पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी जिनकी स्थिति है - ऐसे अयोगी (चौदहवें) गुणस्थान के अन्त में सिद्धशिला में जाने की गति क्रिया में भी धर्मास्तिकाय ही निमित्त है - ऐसा सिद्ध करते हैं।

सिद्ध परमात्मा छह अपक्रम से विमुक्त हैं। छह अपक्रम अर्थात् छह दिशाओं में जाना। संसारी जीव देह छूटने पर छहों दिशाओं में (चार दिशायें और ऊपर-नीचे इन छहों दिशाओं में) जाते हैं; परन्तु जब चौदहवें गुणस्थानवाले जीव यहाँ से मोक्ष में जाते हैं, तब उनकी गति इन छह दिशाओं में नहीं होती; अपितु उनका ऊर्ध्वगमन ही होता है।”

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार तो मात्र यही है कि सभी द्रव्यों को अवकाश (रहने का स्थान) देने में आकाशद्रव्य निमित्त है और गमनक्रिया से युक्त समस्त जीवों और पुद्गलों की स्वभाव और विभावरूप गमन क्रियाओं में धर्मद्रव्य और गमनपूर्वक स्थिति (ठहरना) क्रियाओं में अधर्मद्रव्य निमित्त है।

जीव और पुद्गलों को छोड़कर शेष चार द्रव्यों में गमन क्रिया और गमनपूर्वक स्थिति क्रिया होती ही नहीं है, अतः उनमें धर्म और अधर्मद्रव्य की निमित्तता की आवश्यकता ही नहीं है।

सभी द्रव्यों में समानरूप से पाई जानेवाली शेष सभी विशेषतायें उक्त तीनों अमूर्तिक और अचेतन द्रव्यों में भी पाई जाती हैं।

टीका में जो जटिलता (समझने में कठिनाई) प्रतीत होती है; वह तो धर्मद्रव्य की परिभाषा स्पष्ट करते समय जो अयोगी जिनों के स्वरूप पर अनेक महिमावाचक विशेषणों के माध्यम से प्रकाश डाला गया है, उनकी महिमा बताई गई है; उसके कारण प्रतीत होती है।

टीकाकार मुनिराज के हृदय में सिद्धों के प्रति जो अगाध भक्ति है, वह जहाँ भी मौका मिलता है, प्रगट हुए बिना नहीं रहती।

१. वीतराग-विज्ञान, फरवरी मासिक ०९, पृष्ठ २१

6 वीतराग-विज्ञान (दिसम्बर-मासिक) \* 26 नवम्बर 2009 • वर्ष 27 • अंक 9

टीका में जिन स्वभावगति क्रिया और विभावगति क्रिया की चर्चा आई है; उनका स्वरूप इसप्रकार है -

चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जब जीव ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, तब जो गमनक्रिया होती है, वह जीव की स्वभाव-गतिक्रिया है और संसारावस्था में जब जीव कर्म के निमित्त से छहों दिशाओं में गमन करता है; उस समय होनेवाली जीव की गमनक्रिया विभावगतिक्रिया है।

इसीप्रकार एक-एक पृथक् परमाणु गति करता है, वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) विभावगतिक्रिया है। इस स्वाभाविक तथा वैभाविक गतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

सिद्धदशा में जीव स्थित होता है, वह जीव की स्वाभाविक स्थिति क्रिया है और संसारदशा में स्थित होता है, वह जीव की वैभाविक स्थिति क्रिया है। अकेला परमाणु स्थित होता है, वह पुद्गल की स्वाभाविक स्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थित होता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविक स्थितिक्रिया है।

इन जीव-पुद्गलों की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

उक्त गाथा की टीका के उपरान्त टीकाकार एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

( मालिनी )

इह गमननिमित्तं यत्स्थितेः कारणं वा

पदपरमखिलानां स्थानदानप्रवीणम् ।

तदखिलमवलोक्य द्रव्यरूपेण सम्यक्

प्रविशतु निजतत्त्वं सर्वदा भव्यलोकः ॥४६॥

( दोहा )

धर्माधर्माकाश को द्रव्यरूप से जान।

भव्य सदा निज में बसो ये ही काम महान ॥४६॥

जो जीव और पुद्गलों के गमन में निमित्त है, स्थिति में कारण है - ऐसे धर्म और अधर्म द्रव्यों को तथा जो सभी द्रव्यों को स्थान देने में प्रवीण हैं - ऐसे आकाशद्रव्य को द्रव्यरूप से भलीभांति जानकर हे भव्यजीवो ! निजतत्त्वरूप भगवान् आत्मा में प्रवेश करो, निज को निजरूप जानकर-मानकर, निज का ही ध्यान धरो; निज में ही जम जावो, रम जावो, समा जावो।

### नियमसार गाथा ३१

विगत गाथा में किये गये धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्य के निरूपण के उपरान्त अब इस गाथा में कालद्रव्य की चर्चा आरंभ करते हुए सर्वप्रथम व्यवहारकाल की चर्चा करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं ।

तीदो संखेज्जावलिहदसंठाणमप्पाणं ॥३१॥

( हरिगीत )

समय आवलि भेद दो भूतादि तीन विकल्प हैं।

संस्थान से संख्यातगुण आवलि अतीत बखानिये ॥३१॥

समय और आवलि के भेद से कालद्रव्य दो प्रकार का है और भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल के भेद से तीन प्रकार का है। अतीतकाल, संस्थानों (शरीरों) के और संख्यात आवलि के गुणाकार प्रमाण है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह व्यवहारकाल के स्वरूप और उसके विविध भेदों का कथन है।

एक आकाश के प्रदेश में जो परमाणु स्थित हो; उस परमाणु का दूसरे परमाणु के द्वारा मंदगति से उल्लंघन किये जाने में जितना काल लगता है, उतने काल को समय कहते हैं, समय रूप व्यवहारकाल कहते हैं।

ऐसे असंख्य समयों का एक निमिष होता है अथवा आँख मीचने में जितना समय लगता है, उतना समय निमिष है। आठ निमिष की एक काष्ठा होती है। सोलह काष्ठा की कला, बत्तीस कला की घड़ी, साठ घड़ी का दिन-रात, तीस दिन-रात का मास, दो मास की ऋतु, तीन ऋतु का अयन और दो अयन का वर्ष होता है।

आवलि आदि व्यवहार का ऐसा क्रम है।

इसप्रकार व्यवहार काल समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का है अथवा अतीत, अनागत और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।

अब यहाँ अतीत काल को विस्तार से स्पष्ट करते हैं। भूतकाल में हुये सिद्धों की सिद्धपर्याय के प्रादुर्भाव होने से पहिले बीती हुई अनंत आवलि आदि व्यवहार काल और संसार दशा में बीते हुए अनंत संस्थानों (शरीरों) के बराबर अतीत काल अनंत है। इसीप्रकार अनागत (भविष्य) काल भी अनागत सिद्धों के मुक्त होने तक होनेवाले अनंत शरीरों के समान अनंत है। गाथा का ऐसा अर्थ है।

इसीप्रकार का कथन पंचास्तिकाय नामक शास्त्र में कहा है -

समओ णिमिसो कट्टा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।  
 मासोदुअयणसंवच्छरो त्ति कालो परायत्तो ॥१४॥<sup>१</sup>  
 ( हरिगीत )

समय-निमिष-कला-घड़ी दिनरात-मास-ऋतु-अयन ।  
 वर्षादि का व्यवहार जो वह पराश्रित जिनवर कहा ॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष - इसप्रकार पराश्रित काल है, जिसमें पर की अपेक्षा आती है - ऐसा व्यवहार काल है ।<sup>२</sup> आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“सिद्ध भगवान के पूर्व में अनंत शरीर बीत गए, उन शरीरों से संख्यातगुणी आवलि भी बीत गई; इसप्रकार अतीत शरीर भी अनंत हैं और अतीत काल भी अनंत है। अतीत शरीर से अतीत आवलि संख्यातगुणी होने पर भी दोनों अनंत होने से दोनों को अनंतपने की अपेक्षा एक जैसा कहा है ।<sup>३</sup>”

भविष्य का अंत नहीं है, परन्तु उतने काल का ज्ञान, ज्ञान में आ जाता है। अनंत काल बीते और अनंत काल बीतेंगे, वे ज्ञान में आ जाते हैं। तीन काल का ज्ञान तीन काल में निश्चित नहीं होता, किन्तु अल्पज्ञानवाला भी तीन काल के ज्ञान को निश्चित करता है। तीन काल को निश्चित करने के लिए, तीन काल का ज्ञान हो तो ही हो ह्व ऐसा हो तो तीन काल कभी निश्चित ही नहीं हो सकते; किन्तु अल्पज्ञान में यह निश्चित होता है कि आत्मा का स्वभाव तीन काल में जानने योग्य है और इसका निर्णय करनेवाली पर्याय पर्यायवान आत्मा से होती है।

यह अजीव अधिकार चल रहा है, इसमें काल द्रव्य की सिद्धि कर रहे हैं। कालद्रव्य को सर्वज्ञों ने देखा है, मुनियों ने कहा है और शास्त्रों में युक्तिपूर्वक सिद्ध किया गया है - ऐसे व्यवहारकाल की बात करते हैं ।<sup>३</sup>”

इस गाथा और उसकी टीका में यह कहा गया है कि पुद्गल का एक अविभागी परमाणु को अत्यन्त मंदगति से चलकर आकाश के एक प्रदेश से चलकर उसी से सटे हुए दूसरे प्रदेश पर पहुँचने में कम से कम जितना काल लगता है, काल के उस अविभागी अंश को समय कहते हैं।

ऐसे असंख्य समयों का एक निमिष, आठ निमिष का एक काष्ठा, सोलह काष्ठा की एक कला, बत्तीस कला की एक घड़ी, साठ घड़ी का दिन-रात, तीस दिन-रात का एक माह, दो माह की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है।

१. पंचास्तिकाय : गाथा २५ २. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २२५ ३. वही, पृष्ठ २२६

यह व्यवहारकाल समय और आवलि के भेद से दो प्रकार का और भूत, भविष्य और वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का होता है।

काल के ये सब भेद-प्रभेद व्यवहारकाल हैं और कालाणु द्रव्य निश्चयकाल है।

भूतकाल अनंत है, भविष्य काल उससे भी अनंतगुणा है और वास्तविक वर्तमानकाल एक समय का होता है तथा उसके निमिष आदि भेद भी हैं।

इस गाथा की टीका लिखने के उपरान्त टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( मालिनी )

समयनिमिषकाष्ठा सत्कलानाडिकाद्याद्  
दिवसरजनिभेदाज्जायते काल एषः।  
न च भवति फलं मे तेन कालेन किञ्चिद्  
निजनिरूपमतत्त्वं शुद्धमेकं विहाय ॥४७॥

( दोहा )

समय निमिष काष्ठा कला घड़ी आदि के भेद।  
इनसे उपजे काल यह रंच नहीं सन्देह॥  
पर इससे क्या लाभ है शुद्ध निरंजन एक।  
अनुपम अद्भुत आत्मा में ही रहूँ हमेशा ॥४७॥

समय, निमिष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन-रात आदि भेदों से यह व्यवहारकाल उत्पन्न होता है; परन्तु शुद्ध एक निज निरूपम आत्मतत्त्व को छोड़कर उक्त काल से मुझे क्या लाभ है, कुछ भी लाभ (फल) नहीं।

इस कलश का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस प्रकार स्पष्ट करते हैं -

“आत्मा के ज्ञान बिना जीव अज्ञान के कारण अनादिकाल से रखड़ रहा है। मैं चिदानन्द हूँ, देव-शास्त्र-गुरु पर हैं, पर के साथ मेरे कोई संबंध नहीं - यही वास्तव में प्रयोजनभूत है।<sup>१</sup>

यहाँ काल की व्याख्या चल रही है, उसमें यह बात कह रहे हैं कि काल से मेरा क्या प्रयोजन है? बीते काल में ये संयोग नहीं थे, भविष्यकाल में भी ये नहीं रहेंगे और बीते काल के संयोग वर्तमान में भी नहीं है; क्योंकि संयोग तो पराधीन हैं। आत्मा अनादि अनंत है। वह तीनों काल पर से रहित है। आत्मा तो एक है; जो आत्मा से भिन्न हो, वह आत्मा का नहीं है। पूर्वभव में भगवान मिले हों तो वे अब नहीं रहे;

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २२७

अतः वे भगवान भी तेरे नहीं हैं। संयोगी कोई वस्तु तुम्हारी नहीं। पुण्य-पाप के भाव भी छूटनेवाले हैं; अतः वे भी तुम्हारे नहीं है। आत्मा तो त्रिकालीध्रुव चिदानन्द है, इसमें श्रद्धा-ज्ञान और रमणता करना धर्म है।

आत्मा जन्म-मरण नहीं करता। सूर्य व चन्द्र का जिसप्रकार नाश नहीं होता, उसीप्रकार आत्मा का भी नाश नहीं होता। सूर्य और चन्द्र उदय और अस्त होते हैं, यह बात तो एक अपेक्षा से है। जब वे दिखाई देते हैं तो उदय और दिखाई नहीं देते तब अस्त हैं - ऐसा कहते हैं।<sup>१</sup>

अनंतकाल व्यतीत हो गया, किन्तु इनके प्रवाह में मेरा कभी नाश नहीं हुआ - ऐसा धर्मी मानता है। मेरा त्रिकाली स्वरूप तो पवित्र और निरुपम है, इसे छोड़कर कालद्रव्य के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है। आत्मा का स्वरूप समझकर अनंतकाल में अनंतजीव मुक्ति गये हैं।<sup>२</sup>

काललब्धि तो स्वपुरुषार्थ की प्राप्ति को कहते हैं। आत्मा स्व का भान करें, उसे स्वकाललब्धि कहते हैं। आत्मा को जाने बिना कितने काल में मुक्ति होगी ? - यह प्रश्न ही नहीं उठता।<sup>३</sup>

यह आत्मा अनादि से काललब्धि के आश्रय से पर्याय में मंदी का व्यापार कर रहा है; किन्तु उससे आत्मा को लाभ नहीं होता। आत्मा तो निरुपम तत्त्व है, उसे काल से कोई फल नहीं - ऐसा माने तो इस मान्यता के फल में मुक्ति की प्राप्ति होती है।<sup>४</sup>

इसप्रकार हम देखते हैं कि मूल गाथा में समागत वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करते समय भी टीकाकार का मन उक्त विषयवस्तु में रमता नहीं है; उनकी धुन तो एकमात्र आत्मा में ही लगी रहती है, जो लगभग प्रत्येक गाथा की टीका के अन्त में आनेवाले छन्दों में सहज ही प्रगट हो जाती है।

मूल ग्रन्थकार आचार्य कुन्दकुन्ददेव तो परमाध्यात्मिक संत थे ही; परन्तु टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव तो उनसे भी एक कदम आगे बढ़ते दिखाई देते हैं।

### नियमसार गाथा ३२

विगत गाथा में व्यवहारकाल का स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त अब इस गाथा में निश्चय काल की बात करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

जीवादु पोग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया।

लोयायासे संति य परमट्टो सो हवे कालो॥३२॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २२८

२. वही, पृष्ठ २२९

३. वही, पृष्ठ २२९

४. वही, पृष्ठ २२९

( हरिगीत )

जीव एवं पुद्गलों से समय नंत गुणे कहे।  
कालाणु लोकाकाश थित परमार्थ काल कहे गये ॥३२॥

जीव और पुद्गल द्रव्यों से समय अनंत गुणे हैं और जो लोकाकाश में कालाणु हैं, वे परमार्थ (निश्चय) काल हैं।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारि-देव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“ यह मुख्य काल (निश्चय काल) के स्वरूप का व्याख्यान है। वे समय जीवराशि और पुद्गलराशि से अनंत गुणे हैं।

कालाणु लोकाकाश के प्रदेशों में अलग-अलग स्थित हैं, वे कालाणु परमार्थ (निश्चय) काल हैं।”

यही बात प्रवचनसार में कही गई है -

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।  
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स ॥१३८॥

( हरिगीत )

पुद्गलाणु मंदगति से चले जितने काल में।  
रे एक गगनप्रदेश पर परदेश विरहित काल वह ॥१३८॥

काल तो अप्रदेशी है और प्रदेशमात्र पुद्गल परमाणु आकाशद्रव्य के एक प्रदेश को मंदगति से उल्लंघन कर रहा हो, तब वह काल वर्तता है अर्थात् निमित्तभूततया परिणमित होता है।

इस गाथा में 'समय' शब्द से मुख्य कालाणु का स्वरूप कहा है।

अन्यत्र (द्रव्यसंग्रह में) भी कहा है -

लोयायासपदेसे एक्केक्के जे ट्टिया हु एक्केक्का।  
रयणाणं रासी इव ते कालाणु असंखदव्वाणि ॥१५॥<sup>१</sup>

( हरिगीत )

जान लो इस लोक के जो एक-एक प्रदेश पर।  
रत्नराशिवत् जड़े वे असंख्य कालाणु दरव ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु रत्नों की राशि के समान खचित हैं। वे कालाणु असंख्य द्रव्य हैं।

और मार्गप्रकाश नामक ग्रंथ में भी कहा है -

१. द्रव्यसंग्रह : गाथा २२



( अनुष्टुप् )

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदंतरात् ।  
न द्रव्यं नापि पर्यायःसर्वाभावः प्रसज्यते ॥१६॥<sup>१</sup>

( दोहा )

सब द्रव्यों में परिणामन काल बिना न होय ।  
और परिणामन के बिना कोई वस्तु न होय ॥

काल के अभाव में पदार्थों का परिणामन नहीं होगा और परिणामन के न होने पर द्रव्य और पर्याय भी नहीं रहेगी - इसप्रकार सर्वाभाव का प्रसंग उपस्थित होगा ।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज कलश के रूप में दो छन्द स्वयं लिखते हैं, जो इसप्रकार हैं -

( अनुष्टुप् )

वर्तनाहेतुरेषः स्यात् कुम्भकृच्चक्रमेव तत् ।  
पंचानामस्तिकायानां नान्यथा वर्तना भवेत् ॥४८॥  
प्रतीतिगोचराः सर्वे जीवपुद्गलराशयः ।  
धर्माधर्मनभः कालाः सिद्धाः सिद्धान्तपद्धतेः ॥४९॥

( दोहा )

घट बनने में निमित्त है ज्यों कुम्हार का चक्र ।  
द्रव्यों के परिणामन में त्यों निमित्त यह द्रव्य ॥  
इसके बिन न कोई भी द्रव्य परिणमित होय ।  
इसकारण ही सिद्ध रे इसकी सत्ता होय ॥४८॥  
जिन आगम आधार से धर्माधर्मिकाश ।  
जिय पुद्गल अर काल का होता है आभास ॥४९॥

जिसप्रकार घड़ा बनाने में कुम्हार का चक्र निमित्त है; उसीप्रकार यह परमार्थ काल पाँचों अस्तिकायों की वर्तना में निमित्त है । इसके बिना पाँचों अस्तिकायों में वर्तना नहीं हो सकती ।

सिद्धान्तपद्धति अर्थात् आगमानुसार स्थापित जीवराशि, पुद्गल-राशि, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी द्रव्यों का अस्तित्व प्रतीतिगोचर है अर्थात् प्रतीति में आता है ।

उक्त गाथा, टीका और टीका में समागत छन्दों के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“एक जीव, उसके अनंत गुण और उसके एक गुण की अनन्त पर्यायें हैं और जितनी पर्यायें हैं, उतने समय हैं; अतः जीव-पुद्गल से अनंतगुणा समय है । भूत-

भविष्य के समयों का आँकड़ा पूछें तो समय अनंत है – ऐसा जिसने निश्चित किया उसका लक्ष्य वर्तमान से हटकर त्रिकाली पर जमता है। एक त्रिकाली द्रव्य में से अनंत पर्यायें आती हैं। वहाँ द्रव्य की प्रतीति होने पर द्रव्य में राग नहीं – ऐसा ज्ञान होता है और फिर राग का अभाव अवश्य होता ही है।<sup>१</sup>

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु है। जितने लोक के प्रदेश हैं, उतने कालाणु हैं, वही वास्तव में कालद्रव्य है।<sup>२</sup>”

विविध शास्त्रों के उक्त सभी कथनों में यही बताया गया है कि कालाणु निश्चयकाल द्रव्य है। वे कालाणु द्रव्य लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक स्थित हैं; इसप्रकार कुल कालद्रव्य जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही हैं। तात्पर्य यह है कि कालद्रव्यों की संख्या असंख्य (लोकप्रमाण) है। समय कालद्रव्य की पर्यायें हैं। वे समय जीव राशि व पुद्गल राशि से भी अनन्तगुणे अनंत हैं। समय काल का वह सबसे छोटा अंश है कि जिसका विभाजन संभव नहीं है।

### नियमसार गाथा ३३

विगत गाथाओं में कालद्रव्य की चर्चा करने के उपरान्त अब इस गाथा में उक्त चर्चा का उपसंहार करते हुए यह बताते हैं कि अचेतन अमूर्तिक धर्मादि चार द्रव्यों की मात्र स्वभावपर्यायें ही होती हैं, विभावपर्यायें नहीं। गाथा मूलतः इसप्रकार है –

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो।

धम्मादिचउण्हं णं सहावगुणपज्जया होंति ॥३३॥

( हरिगीत )

जीवादि के परिणामन में यह काल द्रव्य निमित्त है।

धर्म आदि चार की निजभाव गुण पर्याय है ॥३३॥

जीवादि सभी द्रव्यों के परिणामन में कालद्रव्य निमित्त है और धर्म, अधर्म, आकाश और काल – इन चार द्रव्यों में स्वभावरूप पर्यायें ही होती हैं।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारि-देव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

“यह कालादि अमूर्त, अचेतन और शुद्ध द्रव्यों की निजस्वभाव गुणपर्यायों का कथन है।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाशरूप पंचास्तिकाय द्रव्यों की पर्यायरूप परिणति का हेतु (निमित्त) होने से मुख्य (निश्चय) कालद्रव्य का लक्षण वर्तनाहेतुत्व है – ऐसा यहाँ कहा गया है।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल – इन चार द्रव्यों को स्वजातीय या विजातीय

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १३३-१३४

२. वही, पृष्ठ १३४

बंध का संबंध न होने से इनकी विभावपर्यायें नहीं होती हैं; परन्तु स्वभावगुणपर्यायें होती हैं - ऐसा अर्थ है।

उक्त स्वभावगुणपर्यायों का पूर्व में प्रतिपादन हो चुका है; अतः यहाँ संक्षेप में सूचित किया गया है।”

इस गाथा में मात्र इतना ही कहा गया है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल - इन द्रव्यों की स्वभावपर्यायें होती हैं; विभावपर्यायें नहीं होतीं; क्योंकि इनमें न तो स्वजातीय बंध होता है और न विजातीय। पंचास्तिकाय में द्रव्यों में जो भी स्वभाव-विभावपर्यायरूप परिणामन होता है, उसमें कालद्रव्य निमित्त होता है।

टीका के उपरान्त टीकाकार मुनिराज एक छन्द प्रस्तुत करते हैं, जो इसप्रकार है-  
( मालिनी )

इति विरचितमुच्चैर्द्रव्यषट्कस्य भास्वद्  
विवरणमतिरम्यं भव्यकर्णामृतं यत्।  
तदिह जिनमुनीनां दत्तचित्तप्रमोदं।  
भवति भवविमुक्त्यै सर्वदा भव्यजन्तोः ॥५०॥  
( त्रिभंगी )

जय भव भय भंजन, मुनि मन रंजन, भव्यजनों को हितकारी।

यह षट्द्रव्यों का, विशद विवेचन, सबको हो मंगलकारी ॥५०॥

भव्यजीवों को अमृत के समान और मुनिराजों के चित्त को प्रमुदित करनेवाला यह छह द्रव्यों का अत्यन्त रमणीय स्पष्ट विवेचन भव्यजीवों को सदा संसार परिभ्रमण से मुक्त होने का कारण बने।

यह छन्द आशीर्वचनरूप छन्द है। इसमें भावना व्यक्त की गई है कि भव्यजीवों के लिए अमृत समान और मुनिराजों के चित्त को प्रमुदित करनेवाला षट्द्रव्यों का यह अत्यन्त रमणीक विवेचन भव्यजीवों को संसार परिभ्रमण से मुक्त होने का कारण बने, सभी को कल्याणकारी हो। ●

### ‘में कौन हूँ’ नये रूप में

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित ‘में कौन हूँ?’ नामक पुस्तक में दिये गये निबन्धों को और अधिक सरल-सुबोध बनाने के लिये उसमें आवश्यक संशोधन एवं परिवर्धन करके आकर्षक रूप में प्रकाशित किया गया है। पुस्तक में 18 नये पेज बढ कर अब कुल 90 पृष्ठ हो गये हैं। इस तरह यह पुरानी पुस्तक की तुलना में और भी अधिक उपयोगी बन गई है।

